कुमाऊँ-गढ़वाल की लोकनाट्य विरासत

डॉ. सारिका कालरा

नवगठित राज्य 'उत्तराखंड' न केवल अपनी भौगोलिक सम्पदा, अपने प्राकृतिक नैसर्गिक सौंदर्य के लिए जाना जाता है बल्कि अपनी धार्मिक, आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक विरासत की दृष्टि से भी यह राज्य अनुपम है। यह राज्य अनादिकाल से देवभूमि और स्वर्गभूमि के नाम से जाना जाता रहा है। वेदों, पुराणों, धार्मिक ग्रन्थों में इस राज्य को विशिष्ट महत्व प्राप्त है। पर्वत राज हिमालय को अपनी गोद में समेटे यह राज्य अनेक परिवर्तनों का साक्षी रहा है। दुर्गम पहाड़, कल-कल बहती हुई नदियां तथा झरने, सुदूर तक फैली सीढ़ीनुमा खेती, घने जंगल, फूलों की घाटी, रमणीक प्राकृतिक छटा, दूर-दूर तक छितरे मिट्टी और पत्थर से बने घर और इन घरों में रहने वाले सीधे-सरल और परिश्रमी लोगों का जीवन विशिष्ट है। इस राज्य के चप्पे-चप्पे में प्रमुख तीर्थ स्थल और ऋषि-मुनियों के आराधना स्थल हैं। आस्था और विश्वास की यह धरती अपने भीतर अपने स्वर्णिम अतीत को समेटे हुए है। प्रत्येक राज्य की अपनी एक संस्कृति होती है जो उसे अन्य राज्यों से विशिष्ट बनाती है। संस्कृति में सत्य, शिव और सुंदर तीन शाश्वत मूल्य निहित हैं। यह संस्कृति ही है जो हमें दर्शन और धर्म के माध्यम से सत्य के निकट लाती है। संस्कृति वह गुण है जो मनुष्य को मनुष्य बनाती है। यह कलाओं के माध्यम से जीवन को सौंदर्य प्रदान करती है। उत्तराखंड कला, संस्कृति और लोक विधाओं से सम्पन्न प्रदेश है। लोकसंस्कृति ही किसी प्रदेश की मूल अवधारणाओं को दर्शाती है। इसके माध्यम से ही उस समाज की गतिशीलता के प्रमाण मिलते हैं। उसी लोकसंस्कृति के प्रमुख आधार हैं- लोकगीत और लोकनाट्य लोकगीत उत्तराखंड की संस्कृति का प्राण तत्व हैं। इन लोक गीतों में इस राज्य की आत्मा निवास करती है। सुमधुर संगीत से सजे इन लोक गीतों के कारण ये लोकगीत समस्त विश्व में अपनी एक विशिष्ट पहचान रखते हैं लेकिन साथ ही उत्तराखंड के लोक नाट्य भी अपनी एक खास शैली के कारण प्रसिद्ध हैं। नाट्य की उत्पत्ति के कई कारण विद्वानों के द्वारा बताए गए हैं। संभवतः इस राज्य में भी सुदूर अंचल में बसे लोग दिन भर खेतों और जंगलों में हाड़-तोड़ मेहनत के बाद इन गीतों और नाटकों द्वारा ही अपना मनोरंजन करते रहे होंगे। जैसा कि ध्यातव्य है उत्तराखंड केवल देवभूमि ही नहीं कहलाती अपितु इसे वीरों की भूमि कहा जाता है। यहाँ अनेक वीर और वीरांगनाएँ हुई जिन्होंने अपने क्षेत्र विशेष की रक्षा के लिए वीरतापूर्ण युद्ध लड़े। गढ़वाल की लक्ष्मीबाई के नाम से प्रसिद्द वीरांगना तीलू रौतेली अपूर्व शौर्य और अदम्य साहस की प्रतिमूर्ति थी। पंद्रह से बीस वर्ष की आयु के बीच उन्होंने सात युद्ध लड़े और युद्ध में बहादुरी का परिचय देते हुए अपने प्राण न्यौछावर किए। 1661 को जन्मी तीलू रौतेली ने कत्युरी राजा धामशाही तथा उसकी सेना के साथ युद्ध किया। धाम शाही ने गढ़वाल के राजा मानशाह पर आक्रमण किया था जिसके कारण तीलू रौतेली के पिता, भाइयों और मंगेतर को जान गंवानी पड़ी थी। सात वर्ष तक लगातार युद्ध लड़ते हुए वीरांगना तीलू रौतेली ने खैरागढ, टिकोली खाल, सल्ट महादेव, भिलण भौण, ज्युन्दालु, चौखुटिया, सराईखेत, कालिंका खाल आदि स्थानों के

युद्ध जीतकर इतिहास के स्वर्णाक्षरों में अपना नाम अंकित किया। इसी कड़ी में गढ़वाल की रानी कर्णावती का नाम भी जुड़ता है। उत्तराखण्ड के प्रमुख इतिहासकार शिव प्रसाद डबराल ने इन्हें गढ़वाल की रानी कर्णावती को नकटीरानी संबोधित किया है। 1635 में नजावत खाँ के नेतृत्व में शाहजहाँ के शासन के दौरान एक बड़ी मुग़ल सेना गढ़वाल पर आक्रमण के लिए भेजी गई। स्टूरियो डू भोगोर के लेखक निकोलस मनु ची लिखते हैं कि मुगलों की तरफ से एक लाख पैदल सैनिक और तीस हजार घुड़सवार थे, पर किसी को अंदेशा नहीं था कि रानीकर्णावती दुर्गा का साक्षात रूप है। रानी कर्णावती के सैनिकों ने मुग़ल सैनिकों को धूल चटा दी। जो सैनिक बच गए गढ़राज्य पर हमला करने के दुस्साहस में रानी कर्णावती द्वारा इनकी नाक कटवा दी गई। इस बात की पुष्टि ट्रैवर्नियर की किताब ट्रेवल्स इन इंडिया तथा बर्नियर की बर्नियूण बोएज टू द ईस्ट इंडिज में मिलती है। इसी तरह गढ़वाल राइफल के जवान जिन्होंने प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान अंग्रेजों की ओर से मेसोपोटामिया के युद्ध में भाग लिया और अंग्रेजों को जीत दिलाई ऐसे वीर चन्द्र सिंह गढ़वाली का नाम पूरे देश में प्रसिद्ध है। माधो सिंह भंडारी गढ़राज्य के चर्चे मुगलों से लेकर तिब्बत राजाओं व गोरखाओं के बीच फैले हुए थे। माधो सिंह भंडारी ने अपने जीवन काल में गढ़राज्य राज्य के सेनापति के तौर पर महीपत शाह, रानी कर्णवती और पृथ्वीपत शाह को अपनी सेवाएं दी। उपर्युक्त वीर- वीरांगनाओं का संदर्भ देने का एकमात्र कारण यही है कि ये वीर- वीरांगनाएँ उत्तराखंड की धरती पर आज भी लोकगीतों और लोक नाट्यों में जीवित हैं। ऐसे वीरों के कारण ही गढ़राज्य मुगलों, गोरखाओं और कुमाऊँ शासकों से लोहा लेने का साहस करता था। सुदूर पहाड़ी अंचल में ये लोक नाट्य जहां मनोरंजन का प्रमुख केंद्र हैं वहीं इनमें उत्तराखंड की वीर परंपरा आज भी जीवित है। इस राज्य की अपनी बहुत सी समस्याएँ हैं जिनमें पलायन मुख्य है जिसके कारण अपनी संस्कृति से विमुखता सहज स्वाभाविक है यह पलायन की प्रवृत्ति का ही अगला हिस्सा है। ऐसी स्थिति में ये लोक नाट्य लोक को अपनी परंपरा से जोड़ने में भी अहम भूमिका निभाते हैं। इन लोक नाट्यों में वीरता के साथ-साथ प्रेम, रहस्य और रोमांच की भी कथाएँ हैं पर प्रमुखता वीर गाथाओं की ही रही।

'भड़ा' उत्तराखंड का एकल नाट्य रूप है। यह उत्तराखंड की विशिष्ट नाट्य शैली है। इसे उत्तराखंड के कुछ अंचलों में 'भडौली' भी कहा जाता है। इस एकल नृत्य को प्रस्तुत करने वाले को 'भाट',रैभाट', 'रणप्या', तथा 'दमै' भी कहा जाता है। इसमें अभिनयकर्ता जिसे 'भाट' या 'चारण' भी कहते हैं, वीरों अथवा राजाओं की प्रशस्ति का गान करता है। गान करते हुए यह 'भाट' अभिनय भी करता है। इसकी तुलना छतीसगढ़ के एकल नाट्य 'पंडवानी' से भी की जाती है। इस एकल नाट्य में अभिनय करने वाले पात्र की वेशभूषा बहुत ही आकर्षक और रोचक होती है। उसके सिर पर पगड़ी और शरीर पर एक लंबा झगुला, अंगिया और चूड़ीदार पजामा होता है। इस एकल नाट्य में वेशभूषा तो खास होती ही ही है साथ ही वाद्य यंत्रों की भी इसमें अहम भूमिका होती है। इसमें अभिनय करने वाला भाट विभिन्न ध्वनियों, हाव-भावों, आंगिक, कायिक, वाचिक अभिनय का प्रदर्शन करता है। क्योंकि पात्र केवल एक है इसलिए नाटक का पूरा दारोमदार अकेले उस पर होता है। इसमें वादक और सहगायन के लिए दो से पाँच सहगायक होते हैं जो बीच-बीच में लंबे आलाप के साथ नाटक की प्रभाव क्षमता को बढ़ाने का कार्य करते हैं। इस एकल नाट्य का आयोजन मेलों, विवाह आदि के अवसर पर होता है। उत्तराखंड में यह लोक मनोरंजन की एक स्वस्थ और सशक्त

परंपरा थी जो लगभग अब समाप्तप्राय है। इसकी नाट्य शैली गद्य-पद्यात्मक है। बीच-बीच में अभिनयकर्ता मुक्तक गीतों का प्रयोग करते हुए नृत्य भी प्रस्तुत करता है। यह नाट्य रात्रि भोजन के बाद प्रातः काल तक चलता है।

'भड़ा' की नाट्य प्रस्तुति के लिए विशेष रंगमंच की आवश्यकता नहीं होती बस एक खुले स्थान पर जहां चार सौ से पाँच सौ लोग आसानी से बैठकर इसे देख सकें वह अनिवार्य है। एकल प्रस्तुति करने वाला पात्र मात्र बारह से चौदह फीट के स्थान का प्रयोग करता है जिसमें वह घूम-घूम कर तथा कभी नृत्य के द्वारा अपनी सजीव प्रस्तुति देता है। पाँच-छह घंटों तक दर्शकों को बांध कर रख सकना कोई आसान काम नहीं इसलिए इसमें मुख्य पात्र का अभिनय में दक्ष होना अनिवार्य है। गीत, नृत्य और अभिनय इन तीनों गुणों में पात्र को कुशल होना अनिवार्य है तभी वह वीर गाथाओं का रोमांचक वर्णन कर सकता है। दर्शकों को उन गाथाओं के मर्म में अवगाहन करवा सकता है।

‘रम्माण' अथवा 'रम्माण उत्सव' उत्तराखंड के चमोली जनपद के विकासखंड जोशीमठ के गावों में हर साल अप्रैल के महीने में आयोजित किया जाता है। यह 500 वर्ष पुरानी परम्परा है। रामायण से जुड़े प्रसंगों के कारण इसे रम्माण उत्सव कहते हैं। श्री राम से जुड़े प्रसंगों के कारण इस लोक शैली में प्रस्तुतिकरण, लोकनाट्य, स्वाँग, देवयात्रा, परंपरागत पूजा अनुष्ठान, भुम्याल देवता की वार्षिक पूजा, गांव के देवताओं की वार्षिक भेंट आदि आयोजन इस उत्सव में होते हैं। ऐसा माना जाता है कि जब मध्यकाल में सनातन धर्म का प्रभाव कम हो रहा था। तब आदि गुरु शंकराचार्य जी ने सनातन धर्म में नई जान फुंकने के लिए पूरे देश में चार मठों, मंदिरों और तीर्थों की स्थापना की। जोशीमठ के आस-पास शंकराचार्य जी के आदेश पर उनके कुछ शिष्यों ने गांव-गांव जाकर पौराणिक मुखौटों से नृत्य करके लोगो में अपने धर्म के प्रति चेतना जगाने का प्रयास किया। यह परंपरा धीरे-धीरे इन क्षेत्रों में इस समाज का अभिन्न अंग बन गई। इसमें विभिन्न चरित्र और उनके लकड़ी के मुखौटों का प्रयोग किया जाता है जिन्हें 'पत्तर' कहा जाता है। 'पत्तर' शहतूत (केमू) की लकड़ी पर कलात्मक तरीके से बनाए जाते हैं। रम्माण उत्सव ग्यारह से तेरह दिनों तक मनाया जाता है।

'रम्माण 'लोक नाट्य के अंतर्गत राम, लक्ष्मण, सीता और हनुमान के पात्रों द्वारा लोकनृत्य शैली में रामकथा के मुख्य प्रसंगों का प्रस्तुतिकरण ढोल के तालों के साथ किया जाता है। कुछ समय तक लगातार प्रस्तुति देने के बाद जब रामायण के किरदार विश्राम करते हैं उस दौरान अन्य ऐतिहासिक व पौराणिक या लोक पात्र आकर लोगों का मनोरंजन करते हैं। इन पत्तरों में मौर-मौरयाण (पशुपालक और उसकी पत्नी), कुरु जोगी (मसखरा) और नरसिंह प्रहलाद पातर मुख्य हैं। रम्माण में मुखौटा नृत्यशैली का प्रयोग किया जाता है। इस नाट्य की सबसे मुख्य विशेषता यह है कि इसमें पात्रों के बीच कोई संवाद नहीं होता। इसमें मुखौटों, ढोल दमाऊ और भोंकोरों और मजीरों आदि से रम्माण नृत्य का आयोजन होता है। इसमें दो प्रकार के मुखौटों का प्रयोग होता है। पहले मुखौटे को द्यो पतर अर्थात देवताओं के मुखौटे कहते हैं तथा दूसरे को ख्यलारी पतर अर्थात मनोरंजन वाले मुखौटे कहते हैं। संगीत का माधुर्य और नृत्य की थिरकन इस नाट्य में जान डाल देता है। वर्ष 2008 में इंदिरा गाँधी नेशनल सेंटर फॉर आर्ट्स ने दिल्ली में 'रामायण

अंकन मंचन और वाचन' विषय पर एक सम्मलेन आयोजित किया। इसमें रम्माण को भी शामिल होने का अवसर मिला और इसकी प्रस्तुति की काफी सराहना की गई। संयुक्त राष्ट्र संघ के संगठन यूनेस्को द्वारा 'रम्माण' को 2009 में विश्व की सांस्कृतिक धरोहर का दर्जा दिया गया। इनके अतिरिक्त उत्तराखंड के गढ़वाल और कुमायूं अंचल में खेली जाने वाली रामलीलाएँ और उनका मंचन भी लोक नाट्य की स्वस्थ परंपरा का ही अंग है।

संदर्भ ग्रंथः

1. उत्तरांचल गढ़वाल में जनश्रुतियाँ-विश्वास (एक बेजोड़ सांस्कृतिक धरोहर), पुष्कर सिंह कंडारी, अकादमिक एक्सेलेन्स, दिल्ली, सं 2005

2. कुमाऊँनी लोक साहित्य, संस्कृति, डॉ. पुष्पलता भट्ट, भाषा एवं साहित्य, संजय प्रकाशन, दिल्ली, 2010

3. उत्तराखंड मेरी जन्मभूमि, ज्ञानकोश, ऑनलाइन

4. देवभूमि दर्शन, देवभूमि की समृद्ध संस्कृति का दर्शन, ऑनलाइन पत्रिका

- डॉ. सारिका कालरा

सह आचार्य, हिन्दी-विभाग,

लेडी श्रीराम कॉलेज फॉर विमेन,

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली